पी.यू.सी.एल. की अर्जी का सारांश

सन् 2001 के मध्य में भारत में 'बहुतायत के बीच भूख' का एक नया रूप देखने को मिला। एक ओर देश में अनाज का भण्डार इतना भरा जितना कभी नहीं भरा। दूसरी ओर सूखा–ग्रस्त तथा अन्य इलाकों में भूख भी बढ़ी। इस स्थिति के आधार पर पीपुल्स यूनियन ऑफ सिविल लिबर्टीज़ ;पी.यू.सी.एल. यानि नागरिक आज़ादी के लिए जन संगठन – राजस्थान इकाईद्ध ने 'रोटी के हक़' को लेकर सर्वोच्च न्यायालय में एक अर्जी डाली। शुरू में यह केस, सूखा–राहत के विशिष्ट सन्दर्भ में, भारत सरकार, भारतीय खाद्य निगम और छः राज्य सरकारों के विरु(दायर किया गया था। लेकिन बाद में इसमें व्यापक तौर पर मौजूद, सदा चलती रहने वाली भूख को शामिल किया गया और सभी राज्यों को मुद्दई बनाया गया जिनसे जवाब–तलब करना था।

इस अर्जी का कानूनी आधार बहुत सीधा सादा है। संविधान की धारा 21 जीने के हक़ देती है और सरकार का कर्त्व्य बनता है उसकी रक्षा करना। यह एक मौलिक अधिकार है। पहले के कई केसों में सर्वोच्च न्यायालय ने फ़ैसले दिए हो कि जीने के अधिकार का मतलब है इज़्ज़त से जीने का अधिकार और रोटी या खाने का अधिकार भी अन्य कई अधिकारों की तरह इज़्ज़त से जीने के अधिकार में शामिल है। मूल रूप से इस अर्जी में दलील दी गई है कि नीति तथा कार्यान्वयन, दोनों स्तरों पर, राहत की स्थिति के प्रति केन्द्र और राज्य सरकारों की प्रतिक्रिया स्पष्टतः इस अधिकार का उल्लघंन है। इस अर्जी ने इस बात को साबित करने के लिए सरकारी और ज़मीनी स्तर के आँकड़ों का प्रयोग किया है।

खाद्य सुरक्षा मुहैय्या कराने में सरकारी उपेक्षा को लेकर अर्जी ने दो पहलुओं को चिन्हित किया है। एक है सरकार द्वारा राशन प्रणाली ;सार्वजनिक वितरण प्रणालीद्ध का ख़त्म किया जाना। राशन प्रणाली की असफलता कई स्तरों पर उजागर होती है। इसकी सुविधा केवल ग़रीबी रेखा के नीचे जी रहे लोगों के लिए सीमित की गई है लेकिन जो मासिक कोटा तय किया है वह इंडियन काउन्सिल ऑफ मेडिकल रिसर्च द्वारा निर्धारित पौष्टिकता स्तर से नीचे है। इसके अतिरिक्त इसे भी जहाँ–तहाँ ही लागू किया गया है। राजस्थान में गाँवों का एक सर्वे किया गया। इनमें से एक तिहाई गाँवों में ही पिछले तीन महीनों में समय पर अनाज बाँटा गया। उसके आधे गाँवों में अनाज बिल्कुल नहीं बंटा। ग़रीबी रेखा के नीचे जीने वाले परिवारों का सर्वे भी कोई भरोसेमंद नहीं है। कुल मिलाकर इन परिवारों को राशन–प्रणाली के ज़रिए जो मदद मिल रही है हर महीने एक व्यक्ति के लिए पाँच रूपए से भी कम है।

इस अर्जी का दूसरा बिन्दु है सरकार के राहत कार्य की कमियाँ। कई राज्यों में अकाल सम्बंधी नियमावली है जिसके आधार पर राहत कार्य होते हो। सूखा की स्थिति में इन्हें लागू करना अनिवार्य हो जाता है। इसके अनुसार ये ज़रूरी है कि "हर ऐसे व्यक्ति को काम दिया जाए जो राहत–कार्य के लिए आता है।" लेकिन इसके विपरीत राजस्थान सरकार ने 'श्रम–सीमा' की नीति अपनाई है। इसमें सरकारी आँकड़ों के अनुसार 5: सूखा पीड़ित आबादी को ही काम मिल पाता है। वास्तविक रोज़गार का स्तर इससे भी नीचे है। बहुत सी जगहों से ख़बर मिली है कि कानूनी रूप से मान्य न्यूनतम वेतन नहीं मिलता है।

इन समस्याओं की जिम्मेदारी सरकार पैसों की कमी पर डालती है। यह अर्जी इस बहाने को ध्वस्त करती है। सर्वोच्च न्यायालय ने पहले ही कह दिया है कि संवैधानिक कर्त्तव्यों को पूरा करने की असफलता को सरकार 'पैसे की कमी' के मत्थे नहीं मढ़ सकती। वैसे भी, खाद्य के ऊपर तक भरे भण्डारण को देखते हुए यह बहाना बिल्कुल नहीं लागू हो सकता। राज्य सरकार ने बार–बार केन्द्र सरकार से राहत–कार्य के लिए मुफ़्त अनाज माँगा है पर उसे मिला नहीं। लेकिन यह भी है कि राज्यों को जो अनाज मिला है उसका भी अक्सर पूरा उपयोग नहीं हुआ है। इसकी वजह से राज्य सरकार का पक्ष कमज़ोर भी पड़ जाता है।

अर्जी के अन्त में सर्वोच्च न्यायालय से हस्तक्षेप करने की प्रार्थना की गई है। ख़ास तौर पर अर्जी में न्यायालय से माँग की गई है कि वो राजस्थान सरकार को आदेश दे कि वो ;कद्ध सूखा–पीड़ित गाँवों में तुरन्त खुले रोज़गार की व्यवस्था करें, ;खद्ध जो लोग काम नहीं कर पा रहे हो उन्हें एकमुश्त राहत राशि दे ;गद्ध हरेक परिवार को राशन प्रणाली से मिलने वाले अनिवार्य अनाज की मात्रा बढ़ाई जाए और ;घद्ध सभी परिवारों को रियायती दरों पर अनाज दिया जाए। अन्त में अर्जी में अनुरोध किया गया है कि न्यायालय केन्द्र सरकार को हुक़्म दे कि वो इन कार्यक्रमों के लिए मुफ़्त अनाज का प्रबंध करे।